

Chapter सत्रह

भगवान् को अदिति का पुत्र बनना स्वीकार

जैसाकि इस अध्याय में बताया गया है अदिति द्वारा सम्पन्न पयोव्रत अनुष्ठान से अत्यधिक प्रसन्न होकर भगवान् अपने पूर्ण ऐश्वर्य सहित उनके समक्ष प्रकट हुये। उनकी प्रार्थना पर भगवान् ने उनका पुत्र बनना स्वीकार कर लिया।

जब अदिति लगातार बारह दिनों तक *पयोव्रत* अनुष्ठान सम्पन्न कर चुकीं तो भगवान् उन पर अत्यधिक प्रसन्न हुए और उनके समक्ष चतुर्भुजी रूप में पीताम्बर धारण किए प्रकट हुए। ज्योंही अदिति ने भगवान् को अपने समक्ष देखा वे तुरन्त उठ खड़ी हुईं और भगवान् के प्रेम में विभोर होकर उन्हें सादर नमस्कार करने के लिए भूमि पर लोट गईं। आनन्दानुभूति से उनका गला भर आया और भक्ति के कारण उनका सारा शरीर काँपने लगा। यद्यपि वे भगवान् की समुचित स्तुति करना चाह रही थीं, किन्तु वे कुछ भी नहीं कर पाईं और इस तरह कुछ समय तक मौन रहीं। तब ढाढ़स बाँधकर भगवान् के

सौन्दर्य का अवलोकन करती हुई वे प्रार्थना करने लगीं। समस्त जीवों के परमात्मा भगवान् उन पर अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वांश रूप में अवतार लेकर उनका पुत्र बनना स्वीकार किया। वे कश्यपमुनि की तपस्या से पहले ही प्रसन्न हो चुके थे, अतएव उन्होंने उनका पुत्र बनना और देवताओं का पालन करना स्वीकार कर लिया। भगवान् इस प्रकार वचन देकर अन्तर्धान हो गये। भगवान् का आदेश पाकर अदिति कश्यपमुनि की सेवा में तत्पर हो गई। कश्यपमुनि समाधि द्वारा यह देख सके कि भगवान् उनके भीतर हैं और इस तरह उन्होंने अपना वीर्य अदिति के गर्भ में स्थापित किया। हिरण्यगर्भ कहलाने वाले ब्रह्माजी जान गये कि भगवान् अदिति के गर्भ में प्रवेश कर चुके हैं। इसलिए उन्होंने भगवान् की स्तुति की।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा सादिती राजन्स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ।
अन्वतिष्ठद्ब्रतमिदं द्वादशाहमतन्द्रिता ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहे जाने पर; सा—उस; अदितिः—अदिति ने; राजन्—हे राजा; स्व-भर्त्रा—अपने पति; कश्यपेन—कश्यपमुनि से; वै—निस्सन्देह; अनु—इसी प्रकार से; अतिष्ठत्—सम्पन्न किया; ब्रतम् इदम्—इस पयोव्रत को; द्वादश-अहम्—बारह दिनों तक; अतन्द्रिता—बिना आलस्य के।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! इस प्रकार अपने पति कश्यपमुनि से दिए जाने पर अदिति ने बिना आलस्य के उनके आदेशों का दृढ़ता से पालन किया और पयोव्रत अनुष्ठान सम्पन्न किया।

तात्पर्य : किसी भी प्रकार की उन्नति के लिए, विशेषतया आध्यात्मिक जीवन में, गुरु के प्रामाणिक आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करना होता है। अदिति ने ऐसा किया। उन्होंने अपने पति तथा गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन किया। जैसी कि वैदिक आदेशों में पुष्टि हुई है—*यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ*—मनुष्य को गुरु पर पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिए जो शिष्य के आध्यात्मिक जीवन की प्रगति में सहायक होता है। जब शिष्य स्वतंत्र रूप से सोचने लगता है और गुरु के आदेशों की परवाह नहीं करता तो वह असफल हो जाता है (*यस्याप्रसादान् न गतिः कुतोऽपि*)। अदिति ने अपने पति तथा गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन किया और इस तरह वे सफल हुईं।

चिन्तयन्त्येकया बुद्ध्या महापुरुषमीश्वरम् ।
 प्रगृह्येन्द्रियदुष्टाश्चान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २ ॥
 मनश्चैकाग्रया बुद्ध्या भगवत्यखिलात्मनि ।
 वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

चिन्तयन्ति—निरन्तर चिन्तन करते हुए; एकया—एकचित्त होकर; बुद्ध्या—तथा बुद्धि से; महा-पुरुषम्—भगवान् को; ईश्वरम्—परमनियन्ता भगवान् विष्णु को; प्रगृह्य—पूर्णतया वश में करके; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; दुष्ट—शक्तिशाली; अश्वान्—घोड़ों को; मनसा—मन द्वारा; बुद्धि-सारथिः—रथ को हाँकने वाली बुद्धि की सहायता से; मनः—मन; च—भी; एक-अग्रया—एकाग्र होकर; बुद्ध्या—बुद्धि से; भगवति—भगवान् को; अखिल-आत्मनि—सभी जीवों के परमात्मा को; वासुदेवे—भगवान् वासुदेव को; समाधाय—पूर्ण मनोयोग से; चचार—सम्पन्न किया; ह—इस प्रकार; पयः-व्रतम्—पयोव्रत नामक अनुष्ठान को।

अदिति ने पूर्ण अचल ध्यान से भगवान् का चिन्तन किया और इस तरह उन्होंने शक्तिशाली घोड़ों जैसे अपने मन तथा इन्द्रियों को पूरी तरह अपने वश में कर लिया। उन्होंने अपने मन को भगवान् वासुदेव पर केन्द्रित कर दिया और इस तरह पयोव्रत नामक अनुष्ठान पूरा किया।

तात्पर्य : यह भक्तियोग की विधि है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।

“मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति सकाम कर्म या ज्ञान द्वारा किसी भौतिक लाभ की इच्छा से रहित होकर अनुकूल रीति से करे। यही शुद्ध भक्ति कहलाती है।” मनुष्य को केवल वासुदेव कृष्ण के चरणकमलों पर मन को एकाग्र करना होता है (स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः)। इससे मन तथा इन्द्रियाँ वश में हो जायेंगी और मनुष्य अपने आपको भगवान् की भक्ति में पूर्णतः लगा सकता है। भक्त को मन तथा इन्द्रियों को वश में करने के लिए हठयोग विधि का अभ्यास करना आवश्यक नहीं है। उसका मन तथा इन्द्रियाँ भगवान् की अनन्य भक्ति के कारण स्वतः वश में हो जाती हैं।

तस्याः प्रादुरभूतात भगवानादिपुरुषः ।
 पीताम्बराश्रतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तस्याः—उसके सामने; प्रादुरभूत्—प्रकट हुए; तात—हे राजा; भगवान्—भगवान्; आदि-पुरुषः—आदि पुरुष; पीत-वासाः—पीताम्बर धारण किये; चतुः-बाहुः—चार भुजाओं वाले; शङ्ख-चक्र-गदा-धरः—शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किये।

हे राजा! तब अदिति के समक्ष आदि भगवान् पीताम्बर वस्त्र पहने तथा अपने चारों हाथों में

शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किए हुए प्रकट हुए।

तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहस्रोत्थाय सादरम् ।

ननाम भुवि कायेन दण्डवत्प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (भगवान् को); नेत्र-गोचरम्—उसकी आँखों द्वारा दिखने वाले; वीक्ष्य—देखकर; सहसा—एकाएक; उत्थाय—उठकर; स-आदरम्—अत्यन्त आदर पूर्वक; ननाम—सादर नमस्कार किया; भुवि—भूमि पर; कायेन—पूरे शरीर से; दण्डवत्—डंडे के समान गिरते हुए; प्रीति-विह्वला—दिव्य आनन्द के कारण अत्यन्त विह्वल।

जब अदिति की आँखों से भगवान् दिखने लगे तो दिव्य आनन्द के कारण वे इतनी विभोर हो उठीं कि वह तुरन्त ही उठकर भगवान् को सादर नमस्कार करने के लिए भूमि पर दण्ड के समान गिर गईं।

सोत्थाय बद्धाञ्जलिरीडितुं स्थिता

नोत्सेह आनन्दजलाकुलेक्षणा ।

बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृति-

स्तदर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सा—वह; उत्थाय—उठकर; बद्ध-अञ्जलिः—हाथ जोड़े; ईडितुम्—भगवान् की पूजा करने के लिए; स्थिता—स्थित; नोत्सेहे—प्रयत्न नहीं कर सकी; आनन्द—दिव्य आनन्द से; जल—जल से; आकुल-ईक्षणा—पूरित आँखों से; बभूव—हो गई; तूष्णीम्—मौन; पुलक—रोमांच; आकुल—विह्वल; आकृतिः—उसका रूप; तत्-दर्शन—भगवान् के दर्शन करने से; अति-उत्सव—अत्यन्त हर्ष से; गात्र—उसका शरीर; वेपथुः—काँपने लगा।

भगवान् की स्तुति करने में असमर्थ होने के कारण अदिति हाथ जोड़े मौन खड़ी रहीं। दिव्य आनन्द के कारण उनकी आँखों में आँसू भर आये और उनके शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। चूँकि वे भगवान् को अपने समक्ष देख रही थीं अतएव वे आह्लादित हो उठीं और उनका शरीर काँपने लगा।

प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं

तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरुद्वह ।

उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा

रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

प्रीत्या—प्रेम के कारण; शनैः—पुनः-पुनः; गद्गदया—थरथराती हुई; गिरा—वाणी से; हरिम्—भगवान् को; तुष्टाव—तुष्ट; सा—वह; देवी—देवी; अदितिः—अदिति; कुरु-उद्वह—हे महाराज परीक्षित; उद्वीक्षती—टकटकी लगाये हुए; सा—वह;

पिबती इव—मानो पी रही हो; चक्षुषा—आँखों से; रमा-पतिम्—लक्ष्मी के पति, भगवान् को; यज्ञ-पतिम्—समस्त यज्ञों के भोक्ता भगवान् को; जगत्-पतिम्—सारे विश्व के प्रभु तथा स्वामी को।

हे महाराज परीक्षित! तब देवी अदिति ने थरथराती हुई वाणी से अत्यन्त प्रेमपूर्वक भगवान् की स्तुति प्रारम्भ की। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वे लक्ष्मीपति, समस्त यज्ञों के भोक्ता तथा समग्र विश्व के प्रभु तथा स्वामी भगवान् को अपनी आँखों से पिये जा रही हों।

तात्पर्य : पयोव्रत रखने के बाद अदिति को विश्वास हो गया कि उसके समक्ष भगवान् लक्ष्मीपति (रमापति) के रूप में उसके पुत्रों को समस्त ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए प्रकट हुए हैं। उसने अपने पति कश्यप के निर्देशन में पयोव्रत यज्ञ सम्पन्न किया था; अतएव उसने भगवान् को यज्ञपति के रूप में देखा। वह अपने समक्ष अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए समस्त विश्व के प्रभु एवं स्वामी को देखकर पूर्णतः सन्तुष्ट थी।

श्रीअदितिरुवाच

यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद

तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।

आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य

शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

श्री-अदिति: उवाच—देवी अदिति ने कहा; यज्ञ-ईश—हे समस्त यज्ञों के नियन्ता; यज्ञ-पुरुष—सारे यज्ञों के लाभों का भोग करने वाला पुरुष; अच्युत—कभी न चूकने वाला; तीर्थ-पाद—जिनके चरणकमलों पर सारे पवित्र तीर्थस्थान स्थित हैं; तीर्थ-श्रवः—समस्त सन्त पुरुषों के परम आश्रय के रूप में प्रसिद्ध; श्रवण—जिनके विषय में सुनना; मङ्गल—शुभ है; नामधेय—उनके नाम का उच्चारण करना भी शुभ है; आपन्न—शरणागत; लोक—लोगों का; वृजिन—घातक भौतिक स्थिति; उपशम—कम करते हुए; उदय—प्रकट हुआ है; आद्य—आदि भगवान्; शम्—कल्याण; नः—हमारा; कृधि—कृपया हमें प्रदान करें; ईश—हे परमनियन्ता; भगवन्—हे भगवान्; असि—तुम हो; दीन-नाथः—दीनों के एकमात्र आश्रय।

देवी अदिति ने कहा : हे समस्त यज्ञों के भोक्ता तथा स्वामी, हे अच्युत तथा परम प्रसिद्ध पुरुष, जिनका नाम लेते ही मंगल का प्रसार होता है, हे आदि भगवान्, परमनियन्ता, समस्त पवित्र तीर्थस्थानों के आश्रय! आप समस्त दीन-दुखियों के आश्रय हैं और उनका कष्ट कम करने के लिए प्रकट हुए हैं। आप हम पर कृपालु हों और हमारे कल्याण का विस्तार करें।

तात्पर्य : जो लोग व्रत तथा तपस्या करते हैं भगवान् उनके स्वामी हैं और वे ही उन सब को वर देते हैं। वे भक्त के लिए आजीवन पूज्य होते हैं क्योंकि वे कभी भी अपना वचन नहीं तोड़ते। जैसाकि स्वयं उन्होंने भगवद्गीता (९.३१) में कहा है—कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति—हे

कुन्तीपुत्र! तुम इसे घोषित कर दो कि मेरा भक्त कभी भी नहीं नष्ट होता। भगवान् को यहाँ पर अच्युत कहा गया है क्योंकि वे अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। जो भी भक्तों से शत्रुता रखता है, उसका विनाश भक्तों पर भगवान् की कृपा के कारण अवश्य होता है। चूँकि भगवान् गंगाजल के उद्गम हैं इसलिए उन्हें यहाँ तीर्थपाद कहा गया है, जिसका अर्थ है कि सारे तीर्थस्थान उनके चरणकमलों पर स्थित हैं अथवा वे अपने पाँवों से जिसे भी छूते हैं वह पवित्र बन जाता है। उदाहरणार्थ *भगवद्गीता* का शुभारम्भ *धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे* शब्दों से होता है। चूँकि भगवान् कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में उपस्थित थे अतएव वह *धर्मक्षेत्र* अर्थात् तीर्थस्थान बन गया। अतएव परम धार्मिक पाण्डवों की विजय सुनिश्चित हो गई। कोई भी स्थान जहाँ भगवान् अपनी लीलाएँ करते हैं—यथा वृन्दावन या द्वारका—वह पवित्र बन जाता है। भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—कानों को सुखद लगता है और जो भी इस कीर्तन को सुनता है उसके सौभाग्य का विस्तार होता है। भगवान् की उपस्थिति के कारण अदिति को पूरा-पूरा विश्वास था कि उसके लिए असुरों द्वारा उत्पन्न संकटमय स्थिति का अब अन्त होने वाला है।

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय

स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ।

स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोध-

व्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

विश्वाय—समस्त विश्वरूप भगवान् को; विश्व—विश्व के; भवन—सृजन; स्थिति—पालन; संयमाय—तथा संहार के लिए; स्वैरम्—पूर्णतः स्वतंत्र; गृहीत—हाथ में लेकर; पुरु—पूर्णतः; शक्ति-गुणाय—प्रकृति के तीनों गुणों को वश में रखने वाले; भूम्ने—महानतम; स्व-स्थाय—सदा आदि रूप में स्थित रहने वाले; शश्वत्—सनातन रूप से; उपबृंहित—प्राप्त किया; पूर्ण—सम्पूर्ण; बोध—ज्ञान; व्यापादित—पूर्णतया विनष्ट; आत्म-तमसे—आपकी माया; हरये—परमेश्वर; नमः ते—आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

हे प्रभु! आप सर्वव्यापी विश्वरूप इस विश्व के परम स्वतंत्र स्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं। यद्यपि आप अपनी शक्ति को पदार्थ में लगाते हैं, तो भी आप सदैव अपने आदि रूप में स्थित रहते हैं और कभी उस पद से च्युत नहीं होते क्योंकि आपका ज्ञान अच्युत है और किसी भी स्थिति के लिए सदैव उपयुक्त है। आप कभी मोहग्रस्त नहीं होते। हे स्वामी! मैं आपको सादर नमस्कार करती हूँ।

तात्पर्य : चैतन्यचरितामृत (आदि २.११७) में कहा गया है—

सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर अलस

इहा हइते कृष्णे लागे सुदृढ मानस

पूर्णतया कृष्णभावनाभावित बनने के लिए प्रयत्नशील मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् की महिमाओं को यथासम्भव समझे। यहाँ पर अदिति इन महिमाओं की ओर संकेत कर रही हैं। यह विश्व भगवान् की बहिरंगा शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (९.४) में हुई है—*मया ततमिदं सर्वम्*। हम इस विश्व में जो भी देख रहे हैं वह सब भगवान् की शक्ति का प्रसार है, जिस प्रकार जगत के ऊपर फैली धूप तथा ताप सूर्य के विस्तार होते हैं। जब कोई भगवान् की शरण में जाता है, तो वह माया के प्रभाव को पार कर जाता है क्योंकि परमेश्वर सबके हृदयों में, विशेषतया भक्त के हृदय में, स्थित रहने के कारण तथा पूर्णतया बुद्धिमान् होने के कारण मनुष्य को वह बुद्धि प्रदान करते हैं जिससे वह फिर कभी मोह के गर्त में नहीं गिरता।

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मी-

द्यौर्भूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ।

ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टात्

त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

आयुः—आयु; परम्—ब्रह्मा के समान दीर्घ; वपुः—विशेष प्रकार का शरीर; अभीष्टम्—जीवन लक्ष्य; अतुल्य-लक्ष्मीः—जगत में अद्वितीय ऐश्वर्य; द्यौः—स्वर्गलोक; भू—भूलोक; रसाः—अधोलोक; सकल—सभी प्रकार के; योग-गुणाः—आठ यौगिक सिद्धियाँ; त्रि-वर्गः—धर्म, अर्थ तथा काम; ज्ञानम्—ज्ञान; च—तथा; केवलम्—पूर्ण; अनन्त—हे अनन्त; भवन्ति—सम्भव बन जाते हैं; तुष्टात्—आपकी तुष्टि से; त्वत्तः—आपसे; नृणाम्—सभी जीवों को; किम् उ—क्या कहा जाये; सपत्न—शत्रु; जय—जीत; आदिः—इत्यादि; आशीः—ऐसे आशीष या वर।

हे अनन्त! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मनुष्य को ब्रह्मा जैसी दीर्घायु, उच्च, मध्य या निम्नलोक में शरीर, असीम भौतिक ऐश्वर्य, धर्म, अर्थ तथा इन्द्रियतोष, पूर्ण दिव्यज्ञान तथा आठों योगसिद्धियाँ बड़ी आसानी से प्राप्त हो सकती हैं। अपने प्रतिद्वंद्वियों पर विजय प्राप्त करने की बात करना तो अत्यन्त नगण्य उपलब्धि है।

श्रीशुक उवाच

अदित्यैवं स्तुतो राजन्भगवान्पुष्करेक्षणः ।

क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अदित्या—अदिति द्वारा; एवम्—इस प्रकार; स्तुतः—स्तुति किये जाने पर; राजन्—हे राजा (महाराज परीक्षित); भगवान्—भगवान् ने; पुष्कर-ईक्षणः—कमल जैसे नेत्रों वाले; क्षेत्र-ज्ञः—परमात्मा; सर्व-भूतानाम्—सभी जीवों के; इति—इस प्रकार; ह—निस्सन्देह; उवाच—उत्तर दिया; भारत—हे भरतवंश में श्रेष्ठ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे भरतवंश में श्रेष्ठ, राजा परीक्षित! जब अदिति ने सभी जीवों

के परमात्मा कमलनयन की इस तरह पूजा की तो भगवान् ने इस प्रकार उत्तर दिया।

श्रीभगवानुवाच

देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकाङ्क्षितम् ।

यत्सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; देव-मातः—हे देवताओं की माता; भवत्याः—तुम्हारा; मे—मेरे द्वारा; विज्ञातम्—समझा गया; चिर-काङ्क्षितम्—दीर्घकाल से तुम्हें जिसकी अभिलाषा थी; यत्—क्योंकि; सपत्नैः—प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा; हृत-श्रीणाम्—समस्त ऐश्वर्य से विहीन तुम्हारे पुत्रों का; च्यावितानाम्—विमुख; स्व-धामतः—अपने-अपने आवासों से।

भगवान् ने कहा : हे देवताओं की माता! मैं तुम्हारी उस दीर्घकालीन अभिलाषा को पहले ही

समझ गया हूँ जो तुम्हारे उन पुत्रों के कल्याण के विषय में है, जो शत्रुओं द्वारा अपने समस्त ऐश्वर्य से च्युत कर दिये गये हैं और अपने-अपने घरों से खदेड़ दिये गये हैं।

तात्पर्य : भगवान् जन-जन के हृदय में और विशेष रूप से अपने भक्तों के हृदयों में स्थित होने के कारण संकट में भक्तों की सहायता के लिए सदा उद्यत रहते हैं। चूँकि वे सर्वज्ञ हैं अतएव वे जानते हैं कि किस तरह सामञ्जस्य लाया जाये और वे अपने भक्त का कष्ट दूर करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करते हैं।

तान्विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान् ।

प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तान्—उनको; विनिर्जित्य—हराकर; समरे—युद्ध में; दुर्मदान्—बल के कारण गर्वित; असुर-ऋषभान्—असुरों के नेताओं को; प्रतिलब्ध—पुनः प्राप्त करके; जय—विजय; श्रीभिः—ऐश्वर्य सहित; पुत्रैः—अपने पुत्रों सहित; इच्छसि—तुम चाहती हो; उपासितुम्—उनके साथ मिल कर मेरी पूजा करना।

हे देवी! मैं समझ रहा हूँ कि तुम अपने पुत्रों को पुनः प्राप्त करके, शत्रुओं को युद्धभूमि में

पराजित करके तथा अपना धाम तथा ऐश्वर्य पुनः प्राप्त करके उन सब के साथ मिलकर मेरी पूजा करना चाहती हो।

इन्द्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हतानां युधि विद्विषाम् ।

स्त्रियो रुदन्तीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

इन्द्र-ज्येष्ठैः—जिन व्यक्तियों में इन्द्र सबसे बड़ा है; स्व-तनयैः—अपने पुत्रों द्वारा; हतानाम्—जो मारे जा चुके हैं; युधि—युद्ध में; विद्विषाम्—शत्रुओं की; स्त्रियः—पत्नियाँ; रुदन्तीः—विलाप करती; आसाद्य—अपने-अपने पतियों के शवों के निकट आकर; द्रष्टुम् इच्छसि—देखना चाहती हो; दुःखिताः—अत्यन्त दुःखित ।

तुम अपने पुत्रों के शत्रु उन असुरों की पत्तियों को अपने-अपने पतियों की मृत्यु पर विलाप करते हुए देखना चाहती हो जब वे इन्द्रादि देवताओं द्वारा युद्ध में मारे जाएँ ।

आत्मजान्सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहतयशःश्रियः ।

नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

आत्म-जान्—अपने पुत्रों को; सु-समृद्धान्—अत्यन्त ऐश्वर्यवान्; त्वम्—तुम; प्रत्याहत—वापस पाकर; यशः—यश; श्रियः—ऐश्वर्य; नाक-पृष्ठम्—स्वर्गलोक में; अधिष्ठाय—स्थित; क्रीडतः—विलास करते; द्रष्टुम्—देखने के लिए; इच्छसि—इच्छा करती हो ।

तुम चाहती हो कि तुम्हारे पुत्र खोया हुआ यश तथा ऐश्वर्य प्राप्त करें और पुनः पूर्ववत् अपने स्वर्गलोक में निवास करें ।

प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा

अपारणीया इति देवि मे मतिः ।

यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता

न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

प्रायः—लगभग; अधुना—इस समय; ते—वे सभी; असुर-यूथ-नाथाः—असुरों के प्रधान; अपारणीयाः—अजेय; इति—इस प्रकार; देवि—हे माता अदिति; मे—मेरी; मतिः—सम्पत्ति; यत्—क्योंकि; ते—सारे असुर; अनुकूल-ईश्वर-विप्र-गुप्ताः—ब्राह्मणों द्वारा सुरक्षित, जिनकी कृपा से ईश्वर सदैव उपस्थित रहते हैं; न—नहीं; विक्रमः—शक्ति का उपयोग; तत्र—वहाँ; सुखम्—सुख; ददाति—दे सकता है ।

हे देवताओं की माता! मेरे विचार से असुरों के सारे प्रधान अब अजेय हैं क्योंकि वे उन ब्राह्मणों द्वारा सुरक्षित हैं जिन पर भगवान् की सदैव कृपा रहती है। अतएव उनके विरुद्ध बल-प्रयोग अब सुख का स्रोत नहीं बन सकता ।

तात्पर्य : जब किसी व्यक्ति पर ब्राह्मणों तथा वैष्णवों की कृपा होती है, तो उसे कोई भी नहीं हरा सकता। यहाँ तक कि यदि कोई किसी ब्राह्मण द्वारा रक्षित है, तो भगवान् भी किसी प्रकार का हस्तक्षेप

नहीं करते। कहा गया है— *गोब्राह्मणहिताय च।* भगवान् सर्वप्रथम गायों तथा ब्राह्मणों को सारे वरदान देने के लिए उन्मुख होते हैं। अतएव यदि किसी पर ब्राह्मण अनुकूल होते हैं, तो न तो भगवान् किसी तरह का हस्तक्षेप करते हैं न ही कोई अन्य व्यक्ति ऐसे पुरुष के सुख में बाधक बन सकता है।

अथाप्युपायो मम देवि चिन्त्यः
सन्तोषितस्य व्रतचर्यया ते ।
ममार्चनं नार्हति गन्तुमन्यथा
श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

अथ—अतएव; अपि—ऐसी स्थिति के बावजूद; उपायः—कोई साधन; मम—मेरा; देवि—हे देवी; चिन्त्यः—सोचा जाना चाहिए; सन्तोषितस्य—अत्यन्त प्रसन्न; व्रत-चर्यया—व्रत रखकर; ते—तुम्हारे द्वारा; मम अर्चनम्—मेरी पूजा करना; न—कभी नहीं; अर्हति—योग्य है; गन्तुम् अन्यथा—और व्यर्थ होने के लिए; श्रद्धा-अनुरूपम्—अपनी श्रद्धा तथा भक्ति के अनुसार; फल—फल; हेतुकत्वात्—कारण होने से।

हे देवी अदिति! फिर भी चूँकि मैं तुम्हारे व्रत-कार्य से प्रसन्न हुआ हूँ अतएव मुझे तुम पर कृपा करने के लिए कोई न कोई साधन खोजना होगा क्योंकि मेरी पूजा कभी भी व्यर्थ नहीं जाती, प्रत्युत पात्रता के अनुरूप वाँछित फल देने वाली होती है।

त्वयार्चितश्चाहमपत्यगुप्तये
पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः ।
स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान्
गोप्तास्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

त्वया—तुम्हारे द्वारा; अर्चितः—पूजित होकर; च—भी; अहम्—मैं; अपत्य-गुप्तये—तुम्हारे पुत्रों की सुरक्षा करते हुए; पयः-व्रतेन—पयोव्रत द्वारा; अनुगुणम्—जहाँ तक सम्भव है; समीडितः—ठीक से पूजित; स्व-अंशेन—अपने पूर्ण अंश द्वारा; पुत्रत्वम्—तुम्हारा पुत्र बनकर; उपेत्य—इस अवसर का लाभ उठाकर; ते सुतान्—तुम्हारे अन्य पुत्रों को; गोप्ता अस्मि—सुरक्षा प्रदान करूँगा; मारीच—कश्यपमुनि की; तपसि—तपस्या में; अधिष्ठितः—स्थित।

तुमने अपने पुत्रों की रक्षा के लिए मेरी स्तुति की है और महान् पयोव्रत रखकर मेरी समुचित पूजा की है। मैं कश्यपमुनि की तपस्या के कारण तुम्हारा पुत्र बनना स्वीकार करूँगा और इस प्रकार तुम्हारे अन्य पुत्रों की रक्षा करूँगा।

उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् ।
मां च भावयती पत्यावेवं रूपमवस्थितम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

उपधाव—जाकर पूजा करो; पतिम्—अपने पति की; भद्रे—हे भद्र स्त्री; प्रजापतिम्—जो प्रजापति है; अकल्मषम्—जो अपनी तपस्या के कारण अत्यधिक शुद्ध बन गया है; माम्—मुझको; च—भी; भावयती—मनन करती हुई; पत्यौ—अपने पति में; एवम्—इस प्रकार; रूपम्—रूप; अवस्थितम्—वहाँ पर स्थित।

तुम अपने पति कश्यप के शरीर के भीतर सदैव मुझे स्थित मानकर उनकी पूजा करो क्योंकि वे अपनी तपस्या से शुद्ध हो चुके हैं।

नैतत्परस्मा आख्येयं पृष्ठयापि कथञ्चन ।

सर्वं सम्पद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतत्—यह; परस्मै—बाहरी लोगों को; आख्येयम्—प्रकट किया जाये; पृष्ठया अपि—पूछे जाने पर भी; कथञ्चन—किसी के द्वारा; सर्वम्—सब कुछ; सम्पद्यते—सफल होता है; देवि—हे नारी; देव-गुह्यम्—देवताओं के लिए भी गोपनीय; सु-संवृतम्—भलीभाँति गुप्त रखा गया।

हे नारी! यदि कोई पूछे तो भी तुम्हें यह बात किसी को प्रकट नहीं करनी चाहिए। यदि परम गोपनीय बात को गुप्त रखा जाता है, तो वह सफल होती है।

श्रीशुक उवाच

एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।

अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः ।

उपाधावत्पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एतावत्—इस तरह; उक्त्वा—उससे कहकर; भगवान्—भगवान्; तत्र एव—उसी स्थान में; अन्तः-अधीयत—अन्तर्धान हो गये; अदितिः—अदिति; दुर्लभम्—अत्यन्त दुर्लभ सफलता; लब्ध्वा—पाकर; हरेः—भगवान् का; जन्म—जन्म; आत्मनि—अपने में; प्रभोः—भगवान् का; उपाधावत्—तुरन्त गई; पतिम्—अपने पति के पास; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; परया—महान्; कृत-कृत्य-वत्—अपने को अत्यन्त सफल मानती हुई।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : ऐसा कहकर भगवान् उस स्थान से अदृश्य हो गये। भगवान् से यह परम मूल्यवान् आशीर्वाद पाकर कि वे उसके पुत्र रूप में प्रकट होंगे, अदिति ने अपने को अत्यन्त सफल माना और वह अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने पति के पास गई।

स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत ।

प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निस्सन्देह; समाधि-योगेन—ध्यान द्वारा; कश्यपः—कश्यपमुनि ने; तत्—तब; अबुध्यत—समझ सके; प्रविष्टम्—प्रवेश कर गया है; आत्मनि—अपने भीतर; हरेः—भगवान् का; अंशम्—अंश; हि—निस्सन्देह; अवितथ-ईक्षणः—जिसकी दृष्टि कभी धोखा नहीं खाती।

ध्यान समाधि में स्थित होने के कारण अचूक दृष्टि वाले कश्यपमुनि यह देख सके कि उनके भीतर भगवान् का स्वांश प्रविष्ट कर गया है।

सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसम्भृतम् ।

समाहितमना राजन्दारुण्यग्निं यथानिलः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

सः—कश्यप ने; अदित्याम्—अदिति के भीतर; वीर्यम्—वीर्य; आधत्त—रख दिया; तपसा—तपस्या द्वारा; चिर-सम्भृतम्—दीर्घकाल तक कई वर्षों से रुका हुआ; समाहित-मनाः—भगवान् पर पूर्णतया समाधि लगाये; राजन्—हे राजा; दारुणि—काठ में; अग्निम्—अग्नि; यथा—जिस तरह; अनिलः—वायु।

हे राजा! जिस तरह वायु काठ के दो टुकड़ों के बीच घर्षण को तेज करती है और अग्नि उत्पन्न कर देती है उसी तरह भगवान् में पूर्णतया ध्यानमग्न कश्यपमुनि ने अपने वीर्य को अदिति की कुक्षि में स्थानान्तरित कर दिया।

तात्पर्य : जब वायु से क्षुब्ध होकर लकड़ी के दो खण्ड एक दूसरे से रगड़ खाते हैं, तो जंगल में आग लग जाती है। किन्तु वास्तव में यह अग्नि न तो लकड़ी में होती है, न वायु में; यह सदा ही दोनों से भिन्न होती है। इसी प्रकार यहाँ पर यह समझना चाहिए कि कश्यपमुनि तथा अदिति का संयोग सामान्य मानवों जैसा संभोग न था। संभोग के मानवीय स्खलन से भगवान् को कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। वे ऐसे संसारी संयोगों से सर्वथा पृथक् रहते हैं।

भगवद्गीता (९.२९) में भगवान् कहते हैं—समोऽहं सर्वभूतेषु—मैं समस्त जीवों के प्रति समभाव रखता हूँ। तो भी भक्तों की रक्षा करने तथा उत्पात मचाने वाले असुरों का वध करने के लिए भगवान् ने अदिति की कुक्षि में प्रवेश किया। अतएव यह भगवान् की दिव्य लीला है। इसका गलत अर्थ नहीं लगाना चाहिए। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् उसी प्रकार से अदिति के पुत्र बने जिस तरह स्त्री तथा पुरुष के संभोग से एक सामान्य बालक उत्पन्न होता है।

आजकल के मत-मतान्तर के युग में यहाँ पर जीवन की उत्पत्ति के विषय में बताना उपयुक्त होगा। जीव की जीवनी शक्ति—आत्मा—मानव के वीर्य तथा रज से भिन्न है। यद्यपि बद्ध आत्मा को पुरुष तथा स्त्री की प्रजनन कोशिकाओं से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता, वह अपने कर्म के अनुसार उचित स्थिति में रख दिया जाता है (कर्मणा दैवनेत्रेण)। इस तरह जीवन मात्र रज-वीर्य का प्रतिफल नहीं अपितु सारे भौतिक तत्त्वों से स्वतंत्र होता है। जैसाकि भगवद्गीता में भलीभाँति बताया गया है, जीव

किसी भौतिक फल पर आश्रित नहीं होता। जीव को न तो अग्नि द्वारा जलाया जा सकता है, न किसी तेज हथियार से काटा जा सकता है, न जल से भिगोया जा सकता है, न ही हवा से सुखाया जा सकता है। वह भौतिक तत्त्वों से पूर्णतया स्वतंत्र होता है, किन्तु किसी श्रेष्ठ व्यवस्था द्वारा वह इन भौतिक तत्त्वों में धर दिया जाता है। वह सदा ही भौतिक सम्पर्क से पृथक् रहता है (*असङ्गो ह्यं पुरुषः*), किन्तु भौतिक दशा प्राप्त होने के कारण उसे प्रकृति के गुणों का बन्धन भोगना पड़ता है।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।

कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥

“इस तरह जीव प्रकृति के तीनों गुणों का भोग करता हुआ जीवनयापन करता है। यह भौतिक प्रकृति की संगति के कारण होता है। इस तरह विभिन्न योनियों में उसे अच्छे-बुरे से पाला पड़ता है।” (*भगवद्गीता* १३.२२) यद्यपि जीव भौतिक तत्त्वों से पृथक् है, किन्तु वह भौतिक अवस्था को प्राप्त होता है और इस तरह उसे भौतिक क्रियाकलापों के फल भोगने होते हैं।

अदितेर्धिष्ठितं गर्भं भगवन्तं सनातनम् ।

हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

अदितेः—अदिति के गर्भ में; धिष्ठितम्—स्थापित होकर; गर्भम्—गर्भ; भगवन्तम्—भगवान् को; सनातनम्—सनातन; हिरण्यगर्भः—ब्रह्माजी ने; विज्ञाय—यह जानकर; समीडे—स्तुति की; गुह्य-नामभिः—दिव्य नामों के साथ।

जब ब्रह्माजी को यह ज्ञात हो गया कि भगवान् अदिति के गर्भ में हैं, तो वे दिव्य नामों का पाठ करके भगवान् की स्तुति करने लगे।

तात्पर्य : भगवान् सर्वत्र विद्यमान रहते हैं (*अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थम्*)। अतएव जब कोई उनके दिव्य नामों का—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का—उच्चारण करता है, तो भगवान् ऐसे सङ्कीर्तन से स्वयमेव प्रसन्न होते हैं। ऐसा नहीं है कि भगवान् अनुपस्थित होते हैं। वे वहाँ पर उपस्थित रहते हैं और जब भक्त दिव्य नाम का उच्चारण करता है, तो यह भौतिक ध्वनि नहीं होती। अतएव भगवान् सहज ही प्रसन्न होते हैं। भक्त जानता है कि भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं और वह उनके पवित्र नाम का उच्चारण करने मात्र से ही उन्हें प्रसन्न कर सकता है।

श्रीब्रह्मोवाच

जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते ।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने स्तुति की; जय—जय हो; उरुगाय—जिनकी महिमा का निरन्तर गान होता है ऐसे भगवान् की; भगवन्—हे भगवान्; उरुक्रम—जिनके कार्यकलाप अत्यन्त यशस्वी हैं; नमः अस्तु ते—मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ; नमः—मेरा सादर नमस्कार; ब्रह्मण्य-देवाय—योगियों के भगवान् को; त्रि-गुणाय—प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता; नमः—पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ।

ब्रह्माजी ने कहा : हे भगवान्! आपकी जय हो। आप सब के द्वारा महिमान्वित हैं और आपके कार्यकलाप असामान्य होते हैं। हे योगियों के प्रभु, हे प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। मैं आपको पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ।

नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ।

त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णावे ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

नमः ते—मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ; पृश्नि-गर्भाय—पृश्नि (पूर्व जन्म में अदिति) के गर्भ में वास करने वाले को; वेद-गर्भाय—सदैव वैदिक ज्ञान में निवास करने वाले को; वेधसे—ज्ञान से पूर्ण हैं, जो; त्रि-नाभाय—उन्हें जिनकी नाभि से निकले कमलदण्ड के भीतर तीनों लोक निवास करते हैं; त्रि-पृष्ठाय—जो तीनों लोकों से परे हैं; शिपि-विष्टाय—समस्त जीवों के हृदयों में वास करने वाले को; विष्णावे—सर्वव्यापी भगवान् को।

हे सर्वव्यापी भगवान् विष्णु! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ क्योंकि आप समस्त जीवों के हृदयों के भीतर स्थित हैं। तीनों लोक आपकी नाभि के भीतर निवास करते हैं, फिर भी आप इन तीनों लोकों से परे हैं। पहले आप पृश्नि के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे। मैं उन परम स्रष्टा को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्हें केवल वैदिक ज्ञान के द्वारा ही जाना जा सकता है।

त्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्यम्

अनन्तशक्तिं पुरुषं यमाहुः ।

कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं

स्रोतो यथान्तः पतितं गभीरम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; आदिः—मूल कारण; अन्तः—प्रलय के कारण; भुवनस्य—ब्रह्माण्ड के; मध्यम्—इस जगत का पालन; अनन्त-शक्तिम्—असीम शक्ति के आगार; पुरुषम्—परम पुरुष को; यम्—जिसको; आहुः—कहते हैं; कालः—शाश्वत काल; भवान्—आप; आक्षिपति—आकर्षित करते हुए; ईश—परमेश्वर; विश्वम्—सारे ब्रह्माण्ड को; स्रोतः—लहरें; यथा—जिस तरह; अन्तः पतितम्—जल के भीतर गिरी हुई; गभीरम्—अत्यन्त गहरे।

हे प्रभु! आप तीनों लोकों के आदि, मध्य तथा अन्त हैं और वेदों में आप असीम शक्तियों के

आगार परम पुरुष के रूप में विख्यात हैं। हे स्वामी! जिस प्रकार लहरें गहरे जल में गिरी हुई टहनियों तथा पत्तियों को खींच लेती हैं उसी प्रकार परम शाश्वत काल रूप आप इस ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु को खींचते हैं।

तात्पर्य : कभी-कभी काल को कालस्रोत या काल की लहरों के रूप में वर्णित किया जाता है। इस भौतिक जगत की सारी वस्तुएँ काल के अधीन हैं और वे भगवान् रूपी लहरों द्वारा बहाई जाती रहती हैं।

त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां
 प्रजापतीनामसि सम्भविष्णुः ।
 दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां
 परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; वै—निस्सन्देह; प्रजानाम्—सारे जीवों के; स्थिर-जङ्गमानाम्—अचल अथवा चल; प्रजापतीनाम्—सारे प्रजापतियों के; असि—हो; सम्भविष्णुः—हर एक के जनक; दिव-ओकसाम्—उच्चलोक के निवासियों के; देव—हे परमेश्वर; दिवः च्युतानाम्—अपने आवासों से नीचे गिरे हुए देवताओं के; परायणम्—परम आश्रय; नौः—नाव; इव—सदृश; मज्जतः—डूबने वाले के; अप्सु—जल में।

हे प्रभु! आप समस्त चर या अचर जीवों के आदि जनक हैं और आप प्रजापतियों के भी जनक हैं। हे स्वामी! जिस प्रकार जल में डूबते हुए व्यक्ति के लिए नाव ही एकमात्र सहारा होती है उसी तरह आप इस समय अपने स्वर्ग-पद से च्युत देवताओं के एकमात्र आश्रय हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत “भगवान् को अदिति का पुत्र बनना स्वीकार” नामक सत्रहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।